बेदखल

अल्पना मिश्र

हिन्दी ADDA

बेदखल

वे सच, जो सच के भीतर छिपे रहते हैं, दिखते नहीं, जिन्हें बेदखल मान लिया जाता है, वे सच, अपनी अनुपस्थिति में भी उपस्थित होते हैं।

निमित्तमात्रं भव सव्यसाची उर्फ प्रतिमा दी का आना :-

प्रतिमा दी, जो वर्षों से एक खास खाली समय में आया करती थीं, आज अचानक शाम साढ़े पाँच बजे चली आई हैं, वह भी हल्की बारिश में भीगते हुए। रिक्शे से उतरकर, सीढ़ियाँ चढ़ते हुए सीधे घर में दाखिल हो गई हैं। यह कैसे? यह तो उनके पति के ऑफिस से आने का समय है! थोड़ी भीगी साड़ी को ठीक करते हुए सिर को हल्का-सा झटककर बोलीं - 'बात करने का दिल हुआ, बस!'

हल्की बारिश हो रही है। फुहारें बालकनी से भीतर आ-आकर भिगो डालने की जबरदस्त कोशिश में हैं। असल में इसे बालकनी कहा भी जा सकता है और नहीं भी। यह किसी के छत पर बने दो कमरों के आगे की थोड़ी-सी खुली जगह है, जिसे सड़क तक बढ़ जाने की कोशिश से रोकती लोहे की रेलिंग लगी है। रेलिंग उसे उसकी हद बताती है और हमें हमारी भी। हम यहीं तक इसे अपने घर के हिस्से में मान पाते हैं। कभी-कभी जब पानी नहीं आ रहा होता है और नीचे के मकान में आ रहा होता है या बिजली का मीटर ज्यादा बढ़ा हुआ लगता है और हम मन-ही-मन इस बात को मान लेते हैं कि हो न हो नीचे के लोगों ने हमारे मीटर से अपनी बिजली कुछ इस तरह से जोड़ ली है कि हमें पता ही न चले, पर मीटर हमें बता रहा है या ऊपर बिजली गुल है और नीचे जल रही है या फिर हमारे बाथरूम और कमरे रूपी किचन की नाली जाम है। नाली का पानी समुद्र की तरह उमड़ रहा है और हम समुद्र के पानी को कुछ थोड़े से बरतनों से उलीच-उलीचकर फेंक रहे होते हैं, तब उस थोड़े समय के लिए हम इस खुले हिस्से को भी अपना मान लेने से इनकार कर देते हैं। यह इनकार अधिक देर तक नहीं टिकता। बस, बहुत थोड़ी-सी ही देर में हम यहाँ पहले से बाँधे गए तार पर कपड़े फैलाते दिख सकते हैं। यह तार हमारा नहीं है। जैसे कि यह खुली जगह या कि छत पर बने ये दो कमरे। लेकिन जैसे कि हम छत पर बने दो कमरों को थोड़े से पैसों के बदले अपना कह-मान लेते हैं, उसी तरह इस खुली जगह को भी। और इस तार को भी, जो हमारे कपड़ों के भीतर छिपा होता है।

तार नंगा भीग रहा है। हमारा ध्यान उस तरफ नहीं है। हमारा ध्यान बारिश की तरफ है। अंदर की बारिश की तरफ। जो प्रतिमा दी की साड़ी के साथ चली आई है। कमरे रूपी किचन की नाली की तरफ जाकर उन्होंने उसे नीचे से पकड़ कर निचोड़ा है। पूरा पानी नाली में न जाकर बाहर बह आया है। मुझे उनका साड़ी निचोड़ना जितना ठीक लगा था, पानी का बह आना उतना बुरा लग रहा है। ऊपर से वे किचन से निकलकर जिस

चीज से टकराई हैं, वे मेरे ऑफिस जानेवाले कपड़े हैं। घर पहननेवाले होते, तब भी बुरा लगता। कमरे में ही एक रस्सी बाँधी है। उसी के सहारे ये कपड़े लटके हुए हैं। ब्रॉ-पैंटी मैंने संयोग से तौलिए के नीचे कर दी थी। तौलिया एकदम किनारे था। उससे टकराकर निकलना ज्यादा संभव नहीं था। अच्छा ही हुआ अन्यथा अभी मेरी ब्रॉ और पैंटी दिख रही होती। प्रतिमा दी उसे देख लेतीं। कुछ कह देतीं तो? अब नहीं कह सकतीं। उन्हें पता ही नहीं चलेगा।

'भीग गई हैं।' कहकर मैंने चाय के बारे में सोचा। प्रतिमा दी अपने को खुश दिखा रही हैं। मुझे अच्छा लग रहा है। इस मेरे एकांत में उनका आना। वे, जिनके बचपन का सब मेरे बचपन में घुला-मिला है। वे मुझसे एक साल आगे भागती रहीं। पैदा होने से लेकर पढ़ाई पढ़ने तक। इस एक साल आगे भागने से उनके और मेरे बचपन के दृश्य अलग-अलग नहीं हो गए। एक ही रहे। मुझे उनके नाम के आगे 'दीदी' लगाकर बुलाना पड़ता। यह परिवार में अपनी निर्धारित जगह पर बने रहने के लिए जरूरी था। मैं वैसा मान लेती और अपनी जगह पर बनी रहती। अगर यह बना रहना स्थायी होता।

यह अस्थायी था। इसे हम देर में जाने। बचपन के बाद। और तब 'दीदी' में से एक 'दी' हट गया। अपने आप। जानबूझ कर नहीं। दूसरा 'दी' आदत के मारे चलता चला गया। वह अपनी जगह बना रहा। हम अपनी जगह नहीं रह पाए । हम अपने को 'लँगोटिया यार' नहीं कहते। कह ही नहीं सकते। 'लँगोटिया यार' जैसा कोई शब्द लड़कियों ने अपनी पक्की सहेलियों के लिए कभी नहीं गढ़ा। वे 'सखी' में ही सब समेट लेतीं। शायद इसलिए कि शादी हुई नहीं कि दोस्ती खत्म। और अगर शादी के बाद भी किसी ने जबरन बचाने की कोशिश की तो दिन का एक खास समय इस दोस्ती के लिए निर्धारित करना पड़ता है। ये नहीं कि जब दिल हुआ चल पड़े दोस्त के यहाँ। जब मन हुआ रुक गए रात भर। न, बाबा न। शादी के बाद यह सब चलेगा क्या? तो फिर जाइए, पति के साथ सहेली और उनके पति से मिलने। औपचारिक रिश्ते में दिखाते रहिए कि आप दोनों कितनी हिली मिली हैं और दरअसल सारी असली बातें छिपा ले जाइए किसी उस दिन की ताक में, जब आप अकेले मिलें। दिल के दर्द तो तभी छाती खोलकर दिखाए जाएँगे। पर होता क्या है, उस मिलन की घड़ी आने में वक्त लग जाता है और जब तक आप मिलते हैं, न जाने किन अलग दुनियाओं के आदी हो चुके होते हैं और अपने बिना नींव के साम्राज्य पर पर्दा डालते रह जाते हैं।

इस शहर ने वर्षों बाद मुझे और प्रतिमा दी को मिला दिया था। यह मिलना अचानक नहीं हुआ। कई महीने पहले ही घर से चिट्ठी आई थी कि प्रतिमा दी के पति का ट्रांसफर यहीं हो गया है। मगर वे ट्रांसफर रुकवाना चाहते थे। कुछ महीने इसी में सरक

गए। अंततः उन्हें आना पड़ा। उसके भी दो महीने बाद प्रतिमा दी बच्चों और सामान के साथ आईं। मुझे आने के पहले उन्होंने चिट्ठी लिखी थी। लंबी। जिसमें पूरा उनका घर था। मैं नहीं थी। मेरे लिए सूचना भर थी कि वे फलाँ-फलाँ तारीख को आ रही हैं। मुझे यह पहले से ही पता था। घर की चिट्ठी से। अम्मा से ताई जी ने जोर देकर लिखवाया था। यही ताई जी मेरी स्मृति में प्रतिमा दी की माँ के रूप में दर्ज थीं। मैं ऑफिस के बाद रिक्शा करके उनके घर पहुँची थी। वे अपना बेतरतीब फैला सामान ठीक करने में व्यस्त थीं। उन्हें असुविधा हो रही थी कि उनके इतने बिखरे घर में कोई आए। तब भी वे मुझे देखकर खुश हुईं। बोलीं - 'गुड़िया, खाकर जाती।'

उनकी अस्त-व्यस्तता देखकर मुझे उनके काम में मदद करने जुटना पड़ा। फिर खाना खाकर जाने की इच्छा का मान रखते हुए खाना तैयार करवाना भी पड़ा। वैसे मैं वहाँ के किचन में अगर खाना न बना रही होती तो भी उस समय इन दो कमरों में बना रही होती। वैसे शायद कुछ न भी बनाती। यही भाँपकर प्रतिमा दी ने जोर दिया होगा कि - 'गुड़िया, खाकर जाती।' असल में आज डब्बू और पिंकी भी नहीं हैं। घर गए हुए हैं। पढ़ाई में उन्हें इतनी छुट्टी मिल जाती है कि घर रह आएँ। मैं ऑफिस के मारे इतना नहीं जा पाती।

अब अगर मैं सोचूँ कि रात भर यहीं रुक जाऊँ तो बच्चे थोड़ी देर को खुश और फिर परेशान हो जाते हैं। इससे भी ज्यादा खुश और परेशान हो जाते हैं जीजाजी। उनकी इस घर नाम की जगह में एक आदमी को अलग से ठहरा लेने की जगह नहीं है। पहले कोई घर में जा जाए तो दिक्कत नहीं होती थी। औरतें एक साथ किसी जगह या कमरे में और मर्द एक साथ छत पर या बैठक में सो-रह लेते थे। अब ऐसा नहीं है। किसी के आने पर भी पति-पत्नी अपना कमरा नहीं छोड़ते। आनेवाले को अलग जगह की दरकार होती है। ऐसे में पूरा घर मेरे सोने की जगह को लेकर चिंतित हो उठता। जिस सोफे पर मेरे सोने की व्यवस्था होती, जीजाजी उसे रात में उठ-उठकर देखने आते। मैं ठीक से सोई हूँ या नहीं, वे पूछते। सुबह आ गई है, यह मुझे बाथरूम के लिए हल्ला मचाती आवाजों से पता चलता। इतना साफ मुझे दो कमरों में पता नहीं चलता। डब्बू के बाथरूम जाने का कोई समय ही आज तक निश्चित नहीं हो पाया था और पिंकी थोड़ी देर में उठती थी। पर यहाँ स्कूल बस के आने की मजबूरी और प्लास्टिक के डिब्बे में खाने का कुछ सामान ले जाने की चिंता ने सबको हड़बड़ाकर सुबह में झोंक दिया था।

इस सबने कब मुझे ऑउट ऑफ प्लेस कर दिया था, ठीक-ठीक नहीं कह सकती। नतीजा कि मैं उनसे मिलने जाना टालती। वह भी मुझसे मिलने किसी ऐसे ही समय

में आतीं, जब उनके पति बाहर गए हों। बाहर माने ऑफिस। बाहर माने फील्ड ड्यूटी में। देर से आएँगे।

तो जब तक मैं चाय चढ़ाकर प्रतिमा दी की तरफ मुड़ी, वे कमरे में रखे उस एक मात्र पुरातन पेड़ तक पहुँच चुकी थीं, जिसे मनुष्यों ने काट-छाँटकर मेज नाम दे दिया था। कुर्सी हम खरीदना चाहते थे। डब्बू को बहुत परेशानी भी होती थी। वह मुझे तरह-तरह से कोंचता भी था। ऐसा नहीं था कि मैं नहीं चाहती थी। मैं बहुत समय से चाहती थी। एक बार तय भी हो गया था। पर उसी समय अम्मा की तबीयत बिगड़ गई। हमें घर दौड़ना पड़ा फिर घर से यहाँ। फिर यहाँ से और बड़े शहर, जहाँ मेडिकल कॉलेज था। तो यह टल गया। टलता ही चला गया। डब्बू कहता था कि जब वह कमाएगा तब देखना कितनी बढ़िया टेबल-कुर्सी खरीदेगा। मुझे अच्छा लगता। मैं चाहती थी वह दिन आए। हमने इसी मेज को खटिया से सटाकर रखा था। खटिया कभी भी कुर्सी बन सकती थी। यह आसान था।

'अबकी कुर्सी ले लूँगी।' की जगह मेरे मुँह से निकला - 'मोपेड लेना कैसा रहेगा?'

मैं कब से मोपेड के बारे में भी सोच रही थी। कब से क्या? वही जब अम्मा को लेकर बड़े शहर दौड़ना हुआ, तभी से। वहाँ तो लड़कियाँ तरह-तरह के मोपेड, गाड़ियाँ वगैरह चला रही थीं। यहाँ अभी इसका चलन नहीं था। पर किसी को तो शुरू करना होगा। मैंने सोचा था। मोपेड लेने से ऑफिस आने-जाने से लेकर गाँव आने-जाने की भी आसानी हो जाती। कितनी-कितनी देर तक रिक्शे का इंतजार करना पड़ता था। समय की बचत के लिहाज से ही मुझे भाया था। डब्बू से इसी भाव में मैंने कहा था। वह खुश हो गया था। बोला कि 'केवल ऑफिस लेकर तुम जाना। बाकी समय मेरे पास रहेगी।' मैंने हँसकर, 'ठीक है' कहा था। वही बात मन में थी कि यहाँ निकल गई।

'डब्बू को दिक्कत होती होगी।'

मेरे कहे में प्रतिमा दी ने जोड़ा। पिंकी को भी दिक्कत होती है। मुझे भी कभी-कभार ऑफिस का कोई डाटा पटरी से सीधी लाइन खींचकर बड़े पन्ने पर बनाना पड़ता है। तब खटिया पर उकड़ू बैठकर काम करना पड़ता है। तब कुर्सी चाहिए होती है। यह सब मैंने नहीं कहा।

डब्बू के नाम से जरूरत अधिक जरूरत लगती थी।

पिंकी के नाम से नहीं।

मेरे नाम से तो बिल्कुल नहीं।

एक तो मेरी शादी नहीं हुई थी। मेरी जरूरत कोई जरूरत नहीं थी। लोग ऐसा मानते थे। मैं भी कभी-कभी मान लेती थी।

डब्बू भाई था। उस पर सबकी निगाहें थीं। मैं जानती थी। मैं, जो इस शहर में, इस कमरे में, उस ऑफिस में खप रही थी।

बप्पा होते तो कह नहीं सकती कि अच्छा होता या बुरा। जहाँ तक उन्हें देखा, वे इतने खोखले हो चुके थे कि उनमें कुछ भी करना मुश्किल था। दवा, संबंध, विश्वास, कुछ भी।

'यह मोपेड की क्या खुराफात है?'

प्रतिमा दी अचानक पूछा।

'कुछ नहीं। बड़े शहरों में लड़कियाँ इसीलिए ढेर काम कर लेती हैं।'

'हाँ।' प्रतिमा दी ने कुछ निराश होकर कहा।

मैं चाय छान रही थी। किचन कोई दूर नहीं था। इसी कमरे के भीतर था। खटिया के पायताने। यहीं, एक पीढ़े पर गैस स्टोव रखा था। यह गैस स्टोव नया था। थोड़ा-सा साफ कर देने पर चमकता था। प्रतिमा दी वहीं चली आईं। झुककर अपनीवाली चाय उठा लीं।

'हाँ।' कहकर एक मुड़ा-तुड़ा नोट मेरी हथेली में खोंसने लगीं।

यह नोट सौ रुपये का था।

सिद्दिकी जी, छाता और दिल्ली का रास्ता : -

'अम्मा पर बप्पा ने अत्याचार किया था।' चिल्लाकर डब्बू ने सिद्दिकी जी के सामने कहा। इससे सिद्दिकी जी के लिए चाय बनाने जमीन पर उकड़ू होकर बैठी मैं घबराकर उठ गई। प्रतिमा दी पीढ़े पर बैठी थीं। वे भी भौंचक रह गईं। डब्बू ऐसे सोचता है! कम-से-कम सिद्दिकी जी के सामने तो ढंग से बोलना था।

'ऐसे नहीं कहते।' सिद्दिकी जी ने समझाते हुए कहा।

'ऐसे नहीं कहते।' डब्बू ने चिढ़कर कहा।

'घर में खाने को नहीं। इतने बच्चे पैदा करके रख दिए। हमारे सिर पर। अब वो जमाना नहीं रहा कि जितने हाथ, उतना काम। अब जितने पेट, उतनी भूख का जमाना है। ऊपर से अम्मा की तबीयत...'

असल में अब टिंकी और रेनू को भी गाँव से यहाँ लाना जरूरी लग रहा था। हम पाँच थे। चार बहनें और एक भाई। प्रतिमा दी भी थीं। इस तरह छह हो जाते थे। उनके पिता बचपन में ही नहीं रहे थे। तभी से वे और ताई जी हमारे साथ थीं।

सिद्दिकी जी खाट पर से मुश्किल से उठे। असल में उन्हें सबसे उत्तम जगह यानी खाट पर बैठाया गया था। डब्बू मेज पर टेक लगाए खड़े थे। खाट पर जो बैठ जाता, वह धँस जाता था। धँसकर सिद्दिकी जी निकले। डब्बू को कंधे से थपथपाते हुए कहने लगे - 'थोड़े दिन और रुक जाओ बरखुरदार। मैं अपने कजिन से बात करता हूँ। कहीं न कहीं काम मिल जाएगा। मेरे साथ दिल्ली चलना। चिंता करने से क्या होगा। लगे रहना होता है। निरंतर कोशिश करनी होगी।'

'यही मैं भी कहती हूँ।' मैंने जल्दी से कहा।

प्रतिमा दी ने भी सिर हिलाकर यही जताया। डब्बू उनकी बात से कुछ नरम पड़ गए थे।

'डब्बू एम बी ए करना चाहते हैं सिद्दिकी जी। सुनते हैं उसकी बड़ी माँग है।'

प्रतिमा दी ने सलाह माँगी।

'हाँ, हाँ। कैट की परीक्षा होती है।'

'पाँच-पाँच सौ के फार्म भरकर, बड़े शहर जाकर, कई परीक्षा में बैठे थे। अब यहाँ रहकर कहाँ निकाल पाएँगे? कुछ महँगी किताबें भी खरीदें। पर उसके लिए कोचिंग के बिना और यहाँ से, कहाँ हो पाएगा? फिर बार-बार इतना पैसा, खाली आजमाने के लिए तो... आप ही बताइए?'

'सही कह रही हैं आप। इस सबमें नहीं फँसा जा सकता। परिस्थितियों को देखते हुए नौकरी की कोशिश ही ठीक है।'

इस बात पर डब्बू फिर भड़क गए।

'हम डटकर तैयारी कहाँ करने पाए?' और लगे गुस्से में बताने कि दो साल उन्होंने परीक्षा की तैयारी तो क्या खाक की, बल्कि क्या-क्या पापड़ बेलते रहे। जगह-जगह छोटे-छोटे काम किए। जैसे कि यूरेका फोर्ब्स कंपनी की तरफ से घूम-घूमकर घर-घर में उसका एक्वागार्ड वॉटर प्यूरीफायर लगाते रहे। फिर एक कंपनी की तरफ से चूहे भगाने की मशीन घर-घर जाकर बेचे। चूहा भगाने की मशीन फिर भी बिक जाती थी, मगर वॉटर प्यूरीफायर ज्यादा लोग नहीं खरीदते थे। इससे उन्हें ऐसी बीमारियों के नाम याद करने पड़ते और लोगों को बताने पड़ते, जो पानी से नहीं होती थीं, मगर लोगों को डराने के लिए जिनका नाम बताना जरूरी था। उसके बाद वे जिन कंपनियों का सर्फ, साबुन, नैपकीन वगैरह बेचते रहे, उनके विज्ञापन टी.वी. पर नहीं आते। बल्कि थोड़े दिनों के बाद या तो कंपनी ही शहर से चली जाती या फिर बेचने का निर्धारित लक्ष्य पूरा न कर पाने के कारण डब्बू जी की वापसी हो जाती। आप ही बताइए कि क्या गाँव का घर बेचकर भी किसी बड़े शहर से, किसी बड़े इंस्टीट्यूट से एम.बी.ए. की पढ़ाई भर का इंतजाम हो पाता। बड़े शहर जाकर देखिए, एम.बी.ए. करानेवाले कितने इंस्टीट्यूट खुल गए हैं। जितना चमकदार इंस्टीट्यूट, उतनी ही बड़ी फीस। फीस में भी मोल भाव होता है। वैसे गाँव का घर भी कब तक खैर मनाएगा? उसे बेचना तो पड़ेगा ही। चाहे मेरी नौकरी के लिए, चाहे पिंकी की शादी के लिए या फिर बीच में कुछ और आ जाए तो उसके लिए। कब तक खींचेंगे, देखिए। ...परेशान होकर उन्होंने एम.ए. का फार्म भर दिया है।

'क्वालीफिकेशन बढ़ जाएगी। कॉलेज में पढ़ाई तो होती नहीं। गए बिना काम चल जाता है।' उन्होंने कहा।

'तुम डटकर पढ़तो तो। हम चाहे जैसे भी तुम्हें पढ़ाते।' कहकर मैं जमीन पर पूरा बैठकर रोने लगी।

'तुम्हारे चक्कर में पिंकी रह गई। जानते हो टिंकी और रेनू को क्यों नहीं ला पाए और तुम!' प्रतिमा दी यह कहकर अपना गुस्सा और रुलाई दोनों रोकने की कोशिश करने लगीं।

'सब लोग अपनी बात करते हैं। मेरी बात कोई नहीं समझता।' कहकर डब्बू और परेशान हो गए।

'डब्बू की बात भी सुनिए आप लोग।' थोड़ा तेज आवाज में सिद्दिकी जी ने कहा। फिर मेरी ओर देखकर स्नेहपूर्वक कहने लगे - 'कौन-सा अभी समय खत्म हुआ जाता है। पत्राचार से एम.बी.ए. कराएँगे डब्बू को। जीवन से नहीं हारना। मैं हारा क्या? बहुत रास्ते अभी बचे हैं।'

सिद्दिकी जी के ऐसा कहने से हमें लगा कि सिद्दिकी जी हमारे ही घर के हैं। वैसे ही दूर रह रहे हैं जैसे प्रतिमा दी। प्रतिमा दी को भी कुछ ऐसा ही लगा होगा। वे रोने-रोने को हुईं कुछ मुस्करा दीं।

सिद्दिकी जी काले थे। जन्म से ही उनके शरीर के भीतर का एक हिस्सा या तो कमजोर था या था ही नहीं। जैसे कि जन्म से एक ही किडनी थी। एक ही आँख सही काम करती थी। दूसरी से इतना कम दिखता कि उसका होना-न होना बराबर लगता। एक फेफड़ा भी कमजोर था। जिसकी वजह से अक्सर साँस की तकलीफ बनी रहती थी। एक पैर भी दूसरे के अनुपात में हल्का-सा छोटा था। पता नहीं जन्म से था या बाद में हो गया। किसी रोग का शिकार होने से। शरीर के एक भाग के कमजोर होने से वे अक्सर बीमार हो जाते। हालाँकि उन्हें देखकर कोई इस बात का अंदाजा आसानी से नहीं लगा सकता था। उन्होंने बांबे स्कूल ऑफ आर्ट्स से फाइन आर्ट्स में एक डिप्लोमा किया था। किताबें पढ़ते थे। कविताएँ लिखते थे, किंतु किसी को दिखाते नहीं थे। बातों-बातों में एक बार कह पड़े थे।

सिद्दिकी जी के साथ उल्टा हुआ था। वे बड़े शहर से छोटे शहर की तरफ आए थे। एक आँख से कमजोर होने के बावजूद उन्होंने कंप्यूटर सीखा था और गणित का ट्यूशन पढ़ाते थे। गणित व्यावसायिक विषय था। किसी प्राइवेट स्कूल में शुरू में यहाँ गणित पढ़ाने आए थे। फिर ट्यूशन पढ़ाने लगे। ट्यूशन के बीच-बीच में कंप्यूटर की जानकारी भी दे देते। इस तरह उनका ट्यूशन पढ़ाना बहुत पापुलर हो गया। उन्होंने स्कूल में पढ़ाना छोड़ दिया। प्रतिमा दी के बच्चे भी उन्हीं के यहाँ ट्यूशन पढ़ते थे। बड़ा लड़का गणित में बहुत कमजोर था। छमाही परीक्षा में फेल हो गया तो प्रतिमा दी को सिद्दिकी जी के यहाँ जाना पड़ा। वे घबराकर पूछने लगीं - 'वो कौन-सा टॉनिक है, जिसे पीकर लड़के गणित में तेज हो जाते हैं?'

इस पर सिद्दिकी जी ने समझाने जैसा कुछ समझाया। उन्होंने कुछ चित्र दिखाकर यह भी बताया कि कैसे लड़के की रुचि चित्रकला से गणित की तरफ मोड़ी जा सकती है। उनके बनाए चित्र देखकर प्रतिमा दी थोड़ा मुग्ध और अधिक भयभीत हुईं। वे एक पापुलर ट्यूशन टीचर के साथ-साथ एक कलाकार से भी मिल रही थीं। मानो कि ये

टीचर और कलाकार का मिश्रण किसी दूसरी दुनिया के बाशिंदे में हो। वे थोड़ा-थोड़ा नर्वस हुईं। इसी सब में वह क्षमाप्रार्थना की तरह यह कहते हुए चल पड़ीं कि - 'सर, आपका बहुत कीमती समय ले लिया। ट्यूशन के बच्चे इंतजार कर रहे हैं।' सिद्दिकी जी भी चित्र दिखाने में कुछ देर को भूल गए थे। तत्काल बरामदे और कमरे में बैठे बच्चों की तरफ दौड़ने को हुए। थोड़ा बारामदे में झांके फिर कमरे के बच्चों को कुछ बताने लगे।

प्रतिमा दी बहुत विह्वल होकर चल रही थीं कि उन्हें याद आया कि इस सबके बीच उनके हाथ में लटका एक छाता वहीं चित्रों के बीच छूट गया है। अब क्या करें? सिद्दिकी जी तो बच्चों को पढ़ाने लगे होंगे। लेकिन छाता एक ही है उनके पास। सिद्दिकी जी के लिए यह छाता छोड़ा नहीं जा सकता। वे फिर लौटीं। थोड़ा डरते-डरते बरामदे से झाँकी। सिद्दिकी जी बड़ी तन्मयता से किसी बच्चे की कॉपी पर कुछ लिख रहे थे। 'कितनी तन्मयता से पढ़ाते हैं,' उन्होंने सोचा। इतने में सिद्दिकी जी ने सिर ऊपर उठाया और उन्हें खड़ा देखकर चौंक गए।

प्रतिमा दी के मुँह से निकला - 'छाता।'

सिद्दिकी जी समझ गए। वे उठे और चित्रों के बीच छिपे छाते को लेते आए। प्रतिमा दी उन्हें 'सॉरी' या 'थैंक्यू' जैसा कुछ नहीं कह पाईं। उन्हें याद ही नहीं था। अलबत्ता उनके चेहरे के भाव को देखकर सिद्दिकी जी ने 'कोई बात नहीं' कहा।

छाता फिर एक बार छूट गया। इस बार तो प्रतिमा दी ने उसे न माँगने के बारे में भी सोचा। लेकिन वे पैदल अधिक दूर तक भी नहीं चल पाई थीं कि छाता की जरूरत जोर मारने लगी। कभी-कभी यही छाता लेकर उनके पति या बच्चे भी जाते थे। छाते के बारे में वे अकेले निर्णय कैसे कर सकती थीं। तो इस बार भी वे छूट गए छाते को माँगने लौटीं। सिद्दिकी जी वैसे ही मगन होकर बच्चों को पढ़ाने लगे थे। पर अंतर यह रहा कि इस बार वे उन्हें देखकर चौंके नहीं, बल्कि मुस्करा पड़े। जैसे कि उन्हें पहले से पता हो कि छाता छूट गया है। प्रतिमा दी के भी मुँह से इस बार 'छाता' नहीं निकला। वे घबराकर पूछ बैठीं कि 'दिल्ली में आपके परिचित होंगे?'

इस पर मुस्कराते सिद्दिकी जी चौकन्ने हो गए और बच्चों के बीच से रास्ता बनाते हुए उन्हें लाकर चित्रों के किनारे एक स्टूल पर बैठा दिए।

'अपनी परेशानी बताइए**?**' उन्होंने गंभीरता से कहा।

और इसी के बाद सिद्दिकी जी डब्बू से मिलने घर आ गए थे। डब्बू उनसे दो मुलाकातों के बाद खुल गए थे। तीसरी बार वे याद से प्रतिमा दी का छूट गया छाता ले आए थे। प्रतिमा दी ने उत्साह में उन्हें बताया था कि वे भी चित्र बनाया करती थीं। लेकिन बहुत पहले। इस पर सिद्दिकी जी ने उन्हें चित्र बनाने के लिए उकसाया। और एक दिन वे सचमुच कुछ चित्र बना डालीं। बच्चों की पेन्सिल लेकर बैठ गईं। 'जो मन में घुमड़े, उसे कागज पर उतारने की कोशिश,' ऐसा ही कुछ कहते हैं सिद्दिकी जी। उनके भी मन में जो उमड़-घुमड़ रहा था, उसे कागज पर उतारने की कोशिश करने लगीं। आखिरकार सीनरी जैसा कुछ बना। इनमें रंग वे नहीं भर सकी थीं। बारिश में भीगती झोंपड़ियों और खुले में भीगते अधनंगे बच्चों की रेखाएँ इनमें सबसे ठीक-ठाक बन पाई थीं। इसे प्रतिमा दी ने सबसे ऊपर रखा था। इन चित्रों को लेकर वे बड़े संकोच और धड़कते दिल से सिद्दिकी जी के यहाँ पहुँचीं। सिद्दिकी जी सचमुच बनाए गए चित्रों की बात सुनकर हँस पड़े। हँसकर उन्होंने पहला चित्र उठाया।

वे गंभीर हो गए।

दूसरे दिन प्रतिमा दी घर का काम-धाम निपटाकर, सुबह के ग्यारह बजे रिक्शे से बिजली ऑफिस जा रही थीं। रास्ते में बाईं तरफ एक जूते की दुकान पड़ती थी। उसके आगे एक मोची बैठता था। जूते की दुकान के आगे से जब उनका रिक्शा गुजरा, तो उन्होंने वहाँ सिद्दिकी जी को खड़ा पाया।

'रिक्शा, जरा रोकना।' कहकर पलटकर उन्होंने देखा सिद्दिकी जी जूते की दुकान के आगे मोची के पास खड़े उन्हीं की तरफ देख रहे थे। वे हड़बड़ाकर रिक्शे से उतरने लगीं।

'नहीं। बैठे रहिए। कितनी देर कर दिया।' सिद्दिकी जी थोड़ा शरमा कर बोले।

'आप?'

'आपने कल बताया था कि आज बिजली का बिल देने जाएँगी।'

'हाँ, पर आप कब से खड़े... बाप रे...'

प्रतिमा दी को लगा उनसे भारी भूल हो गई। इतनी देर उनकी वजह से सिद्दिकी जी को इंतजार करना पड़ा। उनसे तो कुछ कहते ही नहीं बन रहा। सिद्दिकी जी ही कुछ कहें। मगर चुप खड़े हैं वे भी। प्रतिमा दी रिक्शे पर और सिद्दिकी जी नीचे।

समय को पंख आज ही लगना था।

सिद्दिकी जी ने बड़ी कठिनाई से एक फाइल जैसी चीज, जो उनके हाथ में पड़ी थी, उनकी तरफ बढ़ाई। प्रतिमा दी ने ले लिया। फाइल लेने के साथ ही उन्होंने घबराहट में उसे खोल दिया। उसमें एक चेहरे का चित्र था। प्रतिमा दी के चेहरे का। प्रतिमा दी थोड़ा मुस्कराते हुए शरमाईं।

हालाँकि प्रतिमा दी रुके रहना चाहती थीं। अनंत काल तक। लेकिन उन्होंने इशारे से रिक्शेवाले को चलने के लिए 'हाँ' कह दिया।

'चाय है कि बीरबल की खिचड़ी? लगता है आज नहीं मिलेगी भाई?' सिद्दिकी जी ने कहा।

मैं रोना रोककर झेंप गई। जल्दी से उठकर चाय का कप सिद्दिकी जी को पकड़ा दिया। प्रतिमा दी एक पैकेट बिस्किट ले आई थीं। उसे खोलकर स्टील की एक प्लेट में डालने लगीं तो सिद्दिकी जी ने टोका - 'ऐसे ही दे दीजिए।' खटिया पर बिस्किट का खुला पैकेट रख सिद्दिकी जी उसी में से खाने लगे। फिर हम लोग भी उसी में से लेकर खाने लगे।

सिद्दिकी जी ने हँसकर कहा - 'आप लोगों का धर्म भ्रष्ट हो गया आज।'

सिद्दिकी जी ने हँसकर कहा था, लेकिन हमें धक्का लगा। इतने साफ-साफ हमसे पहले किसी ने नहीं कहा था। गाँव में घर आ जानेवाली बिट्टन की अम्मा ने तो बिल्कुल भी नहीं। उनके लिए अलग कप, गिलास रखा रहता था। उनके सामने ही उनका अलग और अम्मा का अलग कप रखा जाता। वे कभी नहीं पूछतीं। इसलिए इसके जवाब में जो बातें हमारे मुँह से निकलती चली गईं, उससे भी हम चौंक गए। जैसे कि प्रतिमा दी ने चिढ़कर कहा - 'हाँ, जीने से ज्यादा धर्म बचाना जरूरी है।' डब्बू ने इससे भी बुरी तरह कहा था - 'साले हमें जात-पाँत में उलझाकर खुद ब्रेड-बटर खाते हैं। जात छोटे लोगों की होती है। अपर क्लास में कोई जात नहीं होती।'

'हमें आदमी बने रहने दिया जाए, बस।' मैंने कहा।

हम सबने और भी कुछ कहा। इसी तरह का।

हम चौंके। क्योंकि इससे पहले तक हम खुद नहीं जानते थे कि इस प्रश्न के उत्तर में हम इतने साफ-साफ कुछ कह सकते हैं। अम्मा की छुआछूत में बड़े हुए थे हम। बड़े

होकर कदम-कदम पर लड़ते हुए चलना पड़ा। लड़ते-झगड़ते, बिगड़ते-गिरते हम अम्मा के पास ही मुसलमानों के लिए अलग से रखे कप गिलास छोड़ आए थे।

सिद्दिकी जी को उम्मीद नहीं थी कि हम लोग इस तरह भड़केंगे। वे दुखी भाव से कहने लगे - 'हम सबको समझना चाहिए ही। जीने की जरूरत के आगे यह सब बेमानी है। एक मिट्टी में बोते हैं। एक दुकान से अनाज खरीदते हैं। बुनकर कपड़ा बुनता है उसे सब पहनते हैं। मजदूर काम करता है, सब उसका लाभ लेते हैं। तब यह सब नहीं आता!'

'अब तो चाय पीएँगे।' प्रतिमा दी ने हल्का-सा हँसकर कहा।

जिसके जवाब में चाय उठाकर उन्होंने कहा - 'बेरोजगारों के लिए सरकार ने दुनिया भर की योजनाएँ बना रखी हैं। पता है?'

'सब बकवास।' डब्बू ने कहा।

सिद्दिकी जी के जाने के बाद, मुस्कराते हुए, आकाश की तरफ देखकर प्रतिमा दी ने तीन बार कहा - 'कितने अच्छे हैं सिद्दिकी जी...।'

दिल्ली की दिल्लगी है कि फटी मिट्टी से धूप बरसी **:-**

डब्बू दिल्ली से सबके लिए कुछ लाना चाहते थे। बजट छोटा था। उसी में सब करना था। इसीलिए सोच-विचार में डूबे थे। प्रतिमा दी के लिए भी कुछ लेना था। वो सबसे बड़ी थीं। उनके दो बच्चे भी थे। वे सिद्दिकी जी से बार-बार पूछ रहे थे कि क्या लेना चाहिए? जो बहुत महँगी न हो, लेकिन दिल्ली की लगे। जो सुंदर हो, लेकिन आसान भी हो। सिद्दिकी जी इसका सही-सही जवाब नहीं दे पा रहे थे। असल में जबसे सिद्दिकी जी ने डब्बू को साथ दिल्ली ले चलने की बात कही थी, तब से करीब साल भर बीत गया था। अब जाकर दोनों प्राणी दिल्ली पहुँच पाए थे। सिद्दिकी जी ने अपने कजिन से बात की थी। वे उन्हीं के पास ठहर गए थे और एक कार बनानेवाली फैक्ट्री में काम के लिए आवेदन पत्र लिखकर ले गए थे। फैक्ट्री का मालिक कौन था, यह उन्हें पता नहीं था। सिद्दिकी जी को भी नहीं पता था। लेकिन सिद्दिकी जी को यह पता था कि यह कंपनी किसी जापान की कंपनी के साथ मिलकर कार बनाती है। यह उन्होंने डब्बू को बताया भी। यह भी कि आजकल दुनिया भर की कंपनियाँ भारत में उतर आई हैं। इस पर डब्बू ने कहा कि अखबारों और टी.वी. से उन्हें कुछ ऐसा ही पता चला था।

लेकिन ठीक ठीक आज देख रहे हैं। फैक्ट्री के मालिक से मिलना मुश्किल था। बल्कि पता नहीं मालिक यहाँ बैठता था भी कि नहीं? वे संशय में थे। कुछ इंतजार के बाद उसी फैक्ट्री के किसी एक्जीक्यूटिव ने उन्हें बुलवा कर उनसे डिग्रियों के साथ लगे आवेदन पत्र को लेकर चुपचाप रख लिया। अपनी व्यस्तता में ही उसने बिना उनकी तरफ देखे कहा कि 'आपके लायक जगह होने पर सूचित करेंगे।'

'दिल्ली में दौड़ना तो पड़ेगा।' डब्बू ने सिद्दिकी जी से कहा। सिद्दिकी जी ने डब्बू से कहा।

वे लोग फिर एक और फैक्ट्री में गए थे। यह फैक्ट्री नकली लेदर के जूते चप्पल बनाती थी। इसी में काम करनेवाले किसी आदमी का नाम सिद्दिकी जी के कजिन ने बताया था। सिद्दिकी जी ने तत्परता से उसे खोजा और डिग्रियों की फोटोकॉपी वाला आवेदनपत्र उसे पकड़ा दिया। वह आगे-आगे चला तो उसके पीछे सिद्दिकी जी चलने लगे। उनके पीछे डब्बू। वे लोग एक छोटे से कमरे में पहुँचे। यहाँ सफेद शर्ट और काली पैंट पहने एक नाटा, मोटा और कुछ-कुछ काला आदमी बैठा था। उसी के एकदम पास जा कर आगे चलने वाले आदमी ने झुक कर कुछ बहुत धीरे से कहा। नाटे-मोटे और कुछ-कुछ काले आदमी ने आँखें सिकोड़ कर उससे कुछ और धीरे-से कहा। आगे चलने वाला आदमी बाहर निकल आया। उसके पीछे सिद्दिकी जी और डब्बू भी बाहर निकल आए।

'काम लेबर का है। लेकिन वैसा लेबर नहीं। मशीन पर करना होगा। एक-दो दिन में सीख जाओगे।'

उसने डब्बू का नाम-पता नोट किया। हालाँकि नाम-पता आवेदनपत्र में था ही। लेकिन आवेदनपत्र उस अंदरवाले आदमी के पास था।

'रोज के एक सौ बीस रुपये। लेकिन शुरू के तीन महीने आधा तुम्हारा होगा। बाद में पूरा तुम्हारा। ईमानदारी से साफ-साफ बता रहा हूँ। मंजूर हो तो बोलो।'

डब्बू उसके इस प्रस्ताव को सुनकर भी खुश थे। लेकिन सिद्दिकी जी ने सोचने के लिए टाइम देने की बात कही।

'हजार लोग यहाँ घूमते हैं। आपको मौका दे रहे हैं। भाईसाहब का नाम लिया था न इसीलिए।'

सिद्दिकी जी ने उसका फोन नंबर नोट करके कल ही बता देने को कहा।

'बरखुदार, जल्दबाजी न करो।' कहकर वे हाल-ए-दिल्ली बयान करने लगे।

वे ज्यादा नहीं रुक सकते थे। उनका ट्यूशन छूट रहा था। कल रात की बस से लौटना जरूरी था। दूसरे दिन सुबह डब्बू जिद करने लगे कि 'सर, अपने शहर में बँधा काम मिलने से रहा। तीन महीने की ही दिक्कत है। फिर छत्तीस सौ रुपये मिलने लगेंगे।' इस पर उन्होंने जूते की फैक्ट्रीवाले उस आदमी को फोन करके 'हाँ' कह दिया।

तो दिल्ली के सरोजनी नगर बाजार में डब्बू उत्साह से भरे हर चीज देख रहे हैं। इतनी सारी चीजें। इतने रंग। उत्साह में वे तमाम चीजों के दाम पूछते जा रहे हैं, जो उन्हें नहीं भी खरीदनी हैं, उनके भी।

'डब्बू अपने लिए भी कुछ ले लो। बल्कि मेरी तरफ से रहेगा। दीवाली पर। एक शर्ट, कुर्ते जैसी। वहाँ भी लोग देखेंगे कि दिल्ली की शर्ट है।' सिद्दिकी जी ने डब्बू का कंधा पकड़ कर कहा। डब्बू शरमा गए और संकोच के साथ अपने लिए शर्ट पसंद करने लगे।

'जाड़ा आनेवाला है।' सिद्दिकी जी ने सोचा और उस दुकान की तरफ बढ़े, जिसमें तरह-तरह के स्वेटर टँगे थे। स्वेटर सेल में थे। डब्बू सेल देखकर खुश हो गए और इत्मीनान से बैठकर अलग-अलग रंगों के लेडीज स्वेटर छाँटने लगे।

'फिरोजी रंग का मत लेना।' सिद्दिकी जी ने कहा। ऐसा कहते हुए उनके चेहरे के काले रंग पर हल्का-सा बैंगनी रंग आ गया। वे हल्का-सा मुस्कराए भी। डब्बू ने उनके भावों पर खास गौर नहीं किया। फिरोजी रंग का लेडीज कार्डीगन पैक करवाकर सिद्दिकी जी ने उसे अपनी काँख में दबा लिया। डब्बू ने एक मैरून रंग का स्वेटर गुड़िया दी के लिए, गुलाबी रंग का पिंकी के लिए और काले रंग का अम्मा के लिए छाँटा। फिर उन्हें लगा कि ज्यादा हो गया। उन्होंने गुलाबी रंग का स्वेटर दुकानदार को वापस कर दिया। प्रतिमा दी के लिए कुछ नहीं हुआ। उन्होंने सिद्दिकी जी से कहा। इस पर सिद्दिकी जी मुस्करा पड़े। एक बार उन्होंने अपनी काँख में दबे पॉलीथीन को देखा। फिर कहा - 'कुछ और ले लेना।'

फुटपाथ की दुकानों पर रंग-बिरंगे हेयरबैंड मिल रहे थे। पाँच रुपये का जोड़ा है। वे रुककर उससे चार रुपये में देने को कहने लगे। 'तीन जोड़ा लेना है भाई।' उन्होंने सामान के पीछे बैठे लड़के को समझाना चाहा।

'आगे बहुतेरे हैं।' सिद्दिकी जी ने कहा।

डब्बू चलते-चलते एक दुकान पर मंत्रमुग्ध-से रुक गए। वह दुकान चप्पलों की थी। उसकी बगल की दुकानें भी चप्पलों की थीं। उस दुकान में सुंदर-सुंदर चप्पल ऊपर लटके थे, अंदर चप्पल ही चप्पल थे, बाहर तक चप्पल फैले थे। इतने बाहर तक कि कोई चलता आदमी उसे आराम से उठाकर चलता बने।

'ये देखिए।' उन्होंने हैरान होकर सिद्दिकी जी से कहा - 'बाहर तक फैला रखा है।'

'बरखुरदार, इनके आदमी इधर-उधर खड़े रहते हैं। कोई उठा नहीं सकता।' सिद्दिकी जी ने बताया।

'अच्छा। तभी तो।' हैरान डब्बू ने माना। इसी के बाद सिद्दिकी जी ने बताया कि बड़ी दुकानों में कैसे कैमरे लगे रहते हैं। कौन क्या सामान उठा रहा है, काउंटर पर बैठा आदमी स्क्रीन पर देखता रहता है। बाहर निकलने से पहले सामान की चेकिंग होती है।'

डब्बू को लगा कि देश में सचमुच प्रगति हुई है।

डब्बू झुककर प्रतिमा दी के लिए जूती देखने लगे। उनकी चप्पल कितनी बुरी हालत में है। उस दिन उतारकर खटिया पर बैठीं, तो डब्बू ने देखा था। तब कुछ नहीं कहा था। अब उसे बदला जा सकता था। जूती में कुछ ज्यादे पैसे लग जाएँगे तो क्या, प्रतिमा दी सबसे बड़ी हैं। डब्बू ने एक कढ़ाईदार सुंदर लकड़ी के रंग की जूती उठाई।

'कमजोर न हो**?**'

'थोड़ी फैंसी भी लगनी चाहिए।' उन्होंने सिद्दिकी जी को याद दिलाया। इस पर सिद्दिकी जी मुस्कराते हुए झुककर नीचे रखी जूतियाँ देखने लगे। इधर डब्बू उस जूती को वहीं रखकर अगली दुकान की चप्पलें देखने लगे और फिर उससे अगली दुकान की।

इतने में मिट्टी फट गई। जोर का चमकता हुआ धमाका हुआ और धूप की बारिश होने लगी। किसी को कुछ समझ में आए, इससे पहले बहुत कुछ रोशनी, धुएँ, अँधेरे और शोर में समा गया।

इसके बाद कार्यक्रम शुरू हुए। दमकल बुलाई गई। पुलिस आई। लाशें छाँटी, गिनी जाने लगीं। लाशों के चिथड़े समेटने की बात होने लगी। लेकिन कैमरा उठाए लोग उन्हें रोककर रोती-चीखती-बदहवास भीड़ और बदबू को ठेलते हुए लाशों, चीथड़ों, धुएँ

और गंदगी की फोटो उतारने की होड़ में शामिल हो गए। शोक संदेश प्रसारित किए जाने की हड़बड़ी मच गई। उधर दिल्ली के करोलबाग में भी ऐसा ही दृश्य बना...।

इधर गुड़िया को दफ्तर में ही पता चल गया कि दिल्ली में बम फटा है।

'हे प्रभु! वहाँ-वहाँ सिद्दिकी जी और डब्बू न गए हों।' मन-ही-मन उन्होंने कामना की।

प्रतिमा दी भागी-भागी दो कमरों में पहुँचीं। एक छोटा पोर्टेबल टी.वी. मेज पर रखा था। उस पर न्यूज चलाया गया। तमाम वीभत्म्स दृश्यों के बीच उन्हें कोई पहचान में नहीं आया। जैसे-तैसे सुबह आई। अखबारों में तमाम नाम आए। डब्बू और सिद्दिकी जी का नाम नहीं आया। वे लोग इत्यादि में थे कि नहीं थे? वे लोग दिल्ली निवासी भी नहीं थे। खाली कहीं से कहीं पहुँच जाने से आपकी गिनती वहाँ की लाशों में नहीं हो सकती। इसे गुड़िया, पिंकी और प्रतिमा दी उस समय नहीं जान पाईं। यह भी नहीं जान पाईं कि सिद्दिकी जी ने अंतिम समय तक एक फिरोजी लेडीज कार्डीगन काँख में दबाया हुआ था और यह भी नहीं कि डब्बू ने मैरून और काले रंग के दो स्वेटर अम्मा और गुड़िया दी के नाम से ले लिए थे और प्रतिमा दी के लिए चप्पल चुन चुके थे...।

लेकिन यह सब उन्हें कुछ ही दिन बाद पता चल गया। सिद्दिकी जी के कजिन ने उन्हें दिल्ली बुलाया।

दिल वो नगर नहीं कि फिर...

'ये डब्बू के लिए है।'

प्रतिमा दी ने एक छोटा-सा झोला मेज पर रख दिया। जब वे हल्की बारिश में भीगते हुए अंदर आई थीं, तब मुझे उनकी नीचे से भीग गई साड़ी दिखी थी, झोला नहीं दिखा था। उनकी आँखों के नीचे की तरफ बना काला घेरा भी दिखा था और सूजन भी। रात में ज्यादा सिलाई की होंगी। मैंने मन-ही-मन सोचा था। जब ये नए खुले बुटीक में सिलाई का काम पकड़ा है, तब से आँखों के नीचे काले घेरे में सूजन बहुत साफ दिखने लगी है। उन्होंने झुककर मेरी हथेली में जो चीज खोंसी, वह सौ रुपये का नोट था।

'पिंकी जो फार्म भरने को कह रही है, भरवा दो।'

'जीजाजी को पता चला तो जान चली जाएगी तुम्हारी।' मैंने कहा।

वे हल्का-सा हँसीं। मेरी तरफ बढ़ीं और बढ़ने के इस क्रम में फिर जिस चीज से टकराईं, वे वही मेरे, रस्सी पर टँगे कपड़े थे। दफ्तर जानेवाले।

'इधर से प्रतिमा दी।' मैंने कहना चाहा कि इससे पहले उन्होंने तौलिया उलटकर खिसका दिया। उन्होंने वह देख लिया, जो मैं नहीं चाहती थी कि वे देखें। वही मेरी ब्रा और पैंटी। ब्रा की इलास्टिक बुरी तरह गल गई थी। पैंटी का रंग उतर चुका था। मैंने हड़बड़ा कर कहा - 'और हैं।'

'और हैं। बारिशों में इतने कपड़े भीगते हैं कि पुराने-धुराने निकालने पड़ जाते हैं। दिखते कहाँ हैं।'

यह कहकर मैंने जल्दी से तौलिया वापस उन पर डाल दिया। अब कुछ कहेंगी प्रतिमा दी। पता नहीं क्या-क्या कहेंगी? कहेंगी मुझसे तूने सब छिपाया। टिंकी को बड़े शहर पढ़ने भेजकर किस हाल में रह रही है तू! डब्बू के इलाज का बेतहाशा खर्च... आखिरकार डब्बू के ही इलाज में गाँव का घर गिरवी रखना पड़ा। और हमारे पास था ही क्या? पर नहीं, कुछ नहीं कहा उन्होंने। वे धीरे-धीरे मेरे पास आईं। मेरे कंधे को छुआ। फिर सस्ते कपड़ों की दुकान के बारे में बताने लगीं। पता नहीं मुझे क्या हुआ कि मैं अचानक उनके गले लगकर रो पड़ी।

मेज पर अब वह पोर्टेबल टी.वी. नहीं है। डब्बू के पास है। गाँव में। दिन भर लेटे-लेटे उसी पर जाने क्या-क्या देखते रहते हैं। अम्मा वहीं खटिया पर उन्हें खाने-पीने की चीजें दे जाती हैं। अगर उन्हें कुछ देने में देरी हो जाए तो वहीं से अनाप-शनाप गालियाँ शुरू हो जाती हैं। एक हाथ, एक पैर और एक आँख से लाचार डब्बू। उनके चेहरे की प्लास्टिक सर्जरी कराई जा सकती थी। हम प्लास्टिक सर्जरी के बारे में ठीक से कुछ नहीं जानते नहीं थे। जानते होते तो भी कुछ नहीं कर सकते थे। उसके खर्चे की कल्पना भी हम नहीं कर पाते थे।

'मर क्यों नहीं जाती।' जैसा कुछ दिन में दस बार वे अम्मा को कहते हैं। और ताई। इतनी बीमार हो चुकी हैं कि अगर उन्हें जिंदा रखना है तो शहर लाना जरूरी है। गाँव से बार-बार यहाँ लाकर दिखाना कौन करे? करते हैं हम। कभी पिंकी, कभी मैं। प्रतिमा दी ने भी कई बार किया। पर वे बार-बार गाँव नहीं जा पातीं। जीजाजी नाराज होते हैं। उन्हें अपने ससुराल की जिम्मेदारियाँ देखनी होती हैं।

'डब्बू ट्यूशन नहीं पढ़ा सकते? उनका मन भी कुछ लगता और...'

यह कहते हुए प्रतिमा दी ने धीरे से उस छाते को छुआ, जिसे सिद्दिकी जी कभी लौटा गए थे और जो मेरे यहाँ ही रह गया था। छाता उन्होंने वापस रख दिया।

'पिंकी के लिए सेल्स गर्ल का काम करना ठीक नहीं है। ये बड़ा शहर नहीं है।'

'बड़ा शहर होता, तो ठीक होता?' अचानक पिंकी ने पूछा। वह अपने को बारिश से बचाती हुई कमरे में घुसी थी। कब से? शायद कुछ देर से या शायद अभी-अभी।

'नहीं। बड़ा शहर तमाम चीजों को ढक लेता है। छोटा शहर उघाड़ देता है।'

'हाँ। जैसे कि लोगों के मरने को भी।' गुस्सा कर पिंकी ने कहा।

प्रतिमा दी ने छटपटाकर मुझे और पिंकी को देखा।

वे बरसते पानी में बिना कुछ बोले निकल गईं।

'रिक्शा मिल जाएगा?' मैंने सोचा।

https://www.hindiadda.com/bedakhal/